कहीं जमीन नहीं

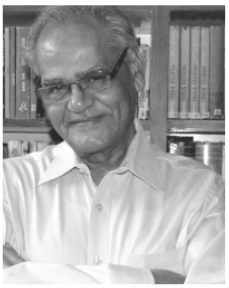

हिन्दी ADDA

रमेश उपाध्याय

कहीं जमीन नहीं

https://www.hindiadda.com/kaheen-jameen-nahin/

अप्पी को शोर पसंद नहीं। अब तो जरा भी बर्दाश्त नहीं होता। लेकिन ये बच्चे हैं कि हमेशा शोर मचाते रहते हैं। खाना और ऊधम मचाना। हर समय। आखिर हद होती है। भाभी को भी जरा परवाह नहीं। कम से कम यह तो सोचें कि कोई बीमार है। पर नहीं। कभी नहीं कहेंगी कि ये जरा शांत रहें। हमेशा काम। हमेशा काम। बच्चों की तरफ ध्यान देने की फुर्सत ही नहीं। सँभाले, तो अप्पी सँभाले। और अब बीमार पड़ी है, तो पड़ी है। यह घर है? इससे तो किसी अस्पताल में पड़ी होती। भैया सुबह-शाम डॉक्टर की तरह आकर हालचाल पूछ लेते हैं। भाभी दिन में चार-छह बार नर्स की तरह पास आकर दवा और पथ्य दे जाती हैं। बस! रात में सब उसे अकेली छोड़कर दूसरे कमरे में सो जाते हैं। अप्पी अकेली पड़ी रहती है। जागती रहती है। पानी-वानी बिस्तर के पास स्टूल पर रख दिया जाता है कि अपने-आप लेकर पी ले। दूसरों की नींद खराब न करे। इसे अपना घर कहते हैं? पिताजी होते, तो ऐसा होता?

लेकिन अप्पी शिकायत नहीं करती। चुपचाप अपने दुख को पीना सीख लिया है उसने। भीतर आग धधकती रहती है। लेकिन ऊपर से देखकर कोई जान नहीं सकता कि यह बीस बरस की लड़की मन ही मन कैसी-कैसी लड़ाइयाँ लड़ती होगी। कोई नहीं जान सकता कि अप्पी नाराज है। लेकिन अप्पी नाराज है। भैया से। भाभी से। बच्चों से। और उन सबसे, जो रिश्तेदारों या संगी-साथियों का फर्ज निभाने के लिए उसका हालचाल पूछने आया करते हैं।

वे आते हैं। इस कदर गंभीर और सहमे-सहमे कि अप्पी को उन पर दया आने लगती है। बेचारे नौसिखुए अभिनेता। गंभीरतापूर्वक मिजाजपुर्सी का अभिनय करना चाहते हैं, लेकिन ठीक से कर नहीं पाते। यों दबे पाँव आएँगे, जैसे अप्पी सो रही हो और वे डर रहे हों कि कहीं उनकी आहट से वह जाग न जाए। यों धीमे स्वरों में बोलेंगे, जैसे कमरे में हवा की जगह कोई बेहद नाजुक चीज भरी हो, जो ऊँचा बोलते ही टूट जाएगी। यों खामोश बैठे रहेंगे, जैसे अप्पी मर गई हो और वे उसका मातम मनाने आए हों।

अप्पी गिनती रहती है। आज कितने लोग उसे देखने आए? प्रभात, सुनंदा, कीर्ति, गुड्डू भाईसाहब और भाभीजी... पाँच और मनोज छह।

कॉलबेल बजी है। क्या फिर कोई? नहीं, भैया होंगे। बाहर खेलते बच्चे शोर मचाते हुए गेट की तरफ भागे हैं। अप्पी अपने कमरे में लेटी-लेटी आवाजों से जानती रहती है कि बाकी घर में क्या हो रहा है। भाभी गेट खोलने गई हैं। सवा सात बजे हैं। भैया आज जल्दी आ गए हैं। भैया ही हैं। लेकिन यह साथ में...? मुकुल? इतने दिन बाद? और इस तरह गला फाड़कर हँसता हुआ? इसे मालूम नहीं कि अप्पी बीमार है?

सब आ रहे हैं। सब अप्पी के कमरे की तरफ ही आ रहे हैं। अप्पी आँखें बंद कर लेती है। संज्ञाशून्य-सी हो जाती है। भैया आवाज देते हैं, "अप्पी।" भाभी कहती हैं, "सो गई हैं शायद।" अप्पी दम साधे तीसरी आवाज सुनने की प्रतीक्षा करती है। लेकिन तीसरी आवाज बाहर से आ रही है, "हाँ-हाँ, तुमको भी, तुमको भी।" बच्चों को टॉफियाँ दे रहा होगा। टॉफियाँ लाना कभी नहीं भूलता। दुनियादार कहीं का! बाद में आएगा और जेब से एक टॉफी निकालकर कहेगा, "लो, तुम्हारे लिए एक ही बची है।"

भैया-भाभी बाहर चले गए हैं। भैया कह रहे हैं, "अप्पी तो सो रही है। चलो, उधर चलकर बैठते हैं।" अप्पी को लगता है, खेल बिगड़ गया। लेकिन वह सुनती है, वह कह रहा है, "सो रही है? कमाल है! यह सोने का वक्त है? ठहरिए, मैं देखता हूँ।" और अप्पी को लगता है, उसकी साँस रुकी, अब रुकी। सुनती है, "अप्पी! अप्पी! उठो, सुबह हो गई।"

और अप्पी सचमुच इस तरह आँखें खोलकर देखती है, जैसे रात भर चैन की नींद सोकर जागी हो। जैसे सचमुच सवेरा हो गया हो। भैया-भाभी के साथ खड़ा मुकुल मुस्करा रहा है। अप्पी सकुचा जाती है। मन होता है, झटपट उठकर बैठ जाए। लेकिन ध्यान आ जाता है कि बीमार है, उठ नहीं सकती। लेटी रहती है। मगर उसे लगता रहता है कि इस तरह लेटे रहना जैसे अभिनय है, जो उसे करना ही है। मुस्करा देती है।

मुकुल एक कुर्सी खींचकर बैठ जाता है। दूसरी कुर्सी पर भैया। भाभी अंदर रसोई की तरफ चली जाती हैं। मुकुल के हाथ में किताबें हैं। हमेशा की तरह। किताबें वह अप्पी के बिस्तर पर रख देता है। अप्पी को पता है, अब जेब में हाथ डालेगा। टॉफी निकालेगा और सिगरेट-माचिस। लेकिन वह हाथ बढ़ाकर अप्पी की कलाई पकड़ लेता है। अनुभवी वैद्य की तरह नब्ज देखता है। बेशर्म। कहता है, "भाईसाहब, आप खामखाह परेशान हो रहे हैं। इसे कुछ नहीं हुआ है। असल में डॉक्टर लोग आजकल बड़े बेईमान हो गए हैं। कोई जरा-सा थक भी जाए, तो लक्सेटोकैलीफोर्नीमीनिया जैसी मील भर लंबी बीमारी बता देंगे। मुझ जैसे किसी योग्य चिकित्सक को आपने बुलाया होता, तो आपका टाइम भी बचता और पैसा भी। दो दिन में इसे ठीक करके दौड़ा देता।"

भैया हँसते हैं, "तुम चिकित्सक कब से हो गए?"

वह आश्चर्य प्रकट करता है, "अरे, आपको पता नहीं? मैं तो जन्म से चिकित्सक हूँ, और चिकित्सक के सिवा कुछ नहीं हूँ।"

भैया भी नाटक में शामिल हो जाते हैं, "महाराज, बातें बनाने वाले तो हमने बहुत देखे हैं। हम तो तब माने, जब आप इस लड़की को ठीक कर दें।"

"अवश्य। अवश्य। लड़की, सुनो, यह दवा लो और फौरन खा जाओ।" जेब से टॉफी निकालकर वह उसका रैपर उतारता है, अप्पी से मुँह खोलने को कहता है और टॉफी उसके मुँह में रख देता है।

भैया हँसते हैं, "वैद्यराज, आपने दवा तो दे दी, रोग का निदान तो किया ही नहीं।"

वह मुस्कराता है, "रोग बहुत सीधा-सादा है, भाईसाहब! यह लड़की थक गई है और मैं बताता हूँ, कैसे थकी है। परीक्षा से पहले यह नर्वस थी। थी न? फिर जैसे-तैसे इसने रात-दिन परेशान रहकर परीक्षा दी। होना तो यह चाहिए था कि परीक्षा के बाद यह महीने भर लंबी तानकर सोती, मगर यह चल दी समाज-सेवा करने। आपने भी रोका नहीं।"

अब वह गंभीर है। भैया अपराधी की तरह बोलते हैं, "हमने तो यह सोचा था कि थोड़ा घूम-फिर आएगी, तो इसका जी बहल जाएगा। हमें क्या मालूम था कि..."

मालूम तो अप्पी को भी नहीं था। कॉलेज की समाज-सेवा समिति की ओर से लड़के-लड़कियों का एक दल अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए जा रहा था। अप्पी ने अपना नाम देते समय यही सोचा था कि अच्छा है, कुछ दिन सैर-सपाटा हो जाएगा। लेकिन... अप्पी के जेहन में डरावनी छायाएँ नाचने लगती हैं। उन पंद्रह दिनों में देखा-सुना सब कुछ एक भयानक दुःस्वप्न की तरह याद आता है। तपते रेगिस्तान का एक सूना-डरावना सिलसिला। बीच-बीच में छोटी-मोटी ढाँणियाँ। थोड़े-से घरों वाली उजाड़-सी बस्तियाँ। चारों ओर साँय-साँय करती मौत। गहरे सन्नाटे में मुर्दों की तरह बेहद धीमी चाल से चलते हुए लोग। जवान लोग बहुत नहीं दिखते। वे आजीविका की खोज में या तो पहले ही जा चुके हैं, या अकाल से अपनी जान बचाने के लिए अब भाग गए हैं। रह गए हैं कुछ बूढ़े, बेसहारा औरतें और बच्चे। अकाल मृत्यु को अटल नियति मानकर जीवन का एक-एक दिन गिनते हुए। सरकारी राहत कार्य चल रहा है। लोगों को काम देने की कोशिशें। लेकिन डेढ़ रुपये पर अँगूठा लगवाकर पिचहत्तर पैसे उन बेजान और काँपती हथेलियों पर रख दिए जाते हैं, जो अपनी मेहनत की मजूरी के लिए नहीं, जैसे भीख पाने के लिए फैली हैं... एक पुराना कुआँ है। उसमें पानी नहीं है। लेकिन सुबह से ही अपने-अपने बर्तन लेकर लोग वहाँ इकट्ठे हो जाते हैं। पानी की प्रतीक्षा करते हुए लोग आँखों पर हथेलियों का छप्पर बनाकर दूर क्षितिज की तरफ देखते हैं। दोपहर को कभी दूर से धूल उड़ाता हुआ एक ट्रक आएगा

और थोड़ा-थोड़ा पानी बाँटकर अगली ढाँणी की प्यास बुझाने चला जाएगा। इस तरह मौत का एक और जिंदा दिन गुजर जाएगा... शहर से आए हुए लड़के-लड़कियों को वे संदेह की दृष्टि से देखते हैं। बात करते हैं, तो लगता है, जैसे फँस गए हों। या फँसाए जा रहे हों। सदियों से चले आते दमन और आतंक की परंपरा उनके चेहरों की झुर्रियों में लिखी है। शहर से आने वाला हर कोई उनके लिए सरकारी आदमी है, महाराजा का आदमी, जिसकी हर बात का जवाब "घणी खम्मा अन्नदाता" कहकर देना लाजिमी है। अप्पी को उन्होंने न जाने कहाँ की राजकुमारी समझा होगा...।

अप्पी मन में बड़ा उत्साह भर ले गई थी कि उन लोगों का दुख बाँट लेगी। लेकिन उस विशालकाय ठोस काली चट्टान जैसे दुख को बाँटना तो दूर, पहले ही दिन लग गया था कि अप्पी उसे इंच भर खिसका भी नहीं पाएगी। रात को जब उसके संगी-साथी अपनी-अपनी डायरियाँ लिख रहे थे, दिन में खींची हुई तस्वीरों के बारे में बातें कर रहे थे, अखबारों में अपनी सचित्र प्रशंसाएँ छपी देखने की कल्पनाएँ कर रहे थे, अप्पी औंधी पड़ी बेआवाज सुबक रही थी। उसे वह औरत याद आ रही थी, जिसने अपना दम तोड़ता बच्चा उसके पैरों के पास रख दिया था। और वह बूढ़ा, जो अप्पी का कोई सवाल सुनकर पाँच-पाँच मिनट खामोश रह जाता था और फिर अपनी निस्तेज आँखों में ढेर-सा भय और आशंका भरकर कहता था, "सब मेहरबानी है...।"

पहली रात अप्पी रोयी थी, लेकिन दूसरे दिन से आँसू कहीं भीतर ही सूखकर रह गए थे। फिर कोई करुण दृश्य उसे विचलित नहीं कर पाया। आँसुओं को पी जाने से अंदर शायद आग लग गई थी, जो बाकी चौदह दिन लगातार बढ़ती-फैलती रही थी। पहले दिन उसे अपने ऊपर, अपने संगी-साथियों पर, अपने देश पर शर्म आई थी, दुख हुआ था। लेकिन दूसरे दिन से गुस्सा आने लगा था। और उसी गुस्से में अप्पी ने एक ढाँणी के उस नौजवान को चाँटा मार दिया था, जो राहत कार्य में मजूरी करने के बजाय अपनी जवान बीवी के साथ बौहरे की पौल में जा पड़ा था और बेशर्मी के साथ मुफ्त के टुकड़े खाकर खुश था। लेकिन अप्पी का गुस्सा तब एक न मिटने वाली खीज में बदल गया था, जब वह उस नौजवान को जलील करने के बावजूद उसमें शर्म पैदा नहीं कर पाई थी। फिर एक दिन वह राहत कार्य वाले ठेकेदार से उलझ पड़ी थी कि वह पूरी मजूरी क्यों नहीं देता है। लेकिन वह बदमाश रात को अपने गुंडों के साथ आकर पूरी टोली के सामने ऐलान कर गया था कि कल सुबह वे लोग अपना डेरा-डंडा वहाँ से उठा लें, नहीं तो लड़कियाँ पार कर दी जाएँगी और किसी को पता भी नहीं चलेगा।

और अगले दिन अप्पी की टोली को वहाँ से आगे चल देना पड़ा था...।

और अब मुकुल कह रहा है, "खैर, कोई बात नहीं भाईसाहब, आप इस लड़की के इलाज की जिम्मेदारी मुझ पर छोड़ दीजिए। मैं सब ठीक कर दूँगा।"

अप्पी को हँसी आती है। कितने भोले विश्वास से कह रहा है कि सब ठीक कर देगा। समझता है, इसने रोग को ठीक-ठीक पहचान लिया है। लेकिन यह रोग! इसे क्या मालूम कि अप्पी का रोग उसकी देह में नहीं, उसकी आत्मा में समा गया है, जहाँ तक कोई दवा नहीं पहुँचती। और इस रोग की दवा हो भी क्या सकती है? विशालकाय ठोस काली चट्टान-सा यह दुख। क्या इसे कोई इंच भर हिला भी सकता है? नहीं। अप्पी मर जाएगी। अप्पी इस दुख से दबी-दबी ही मर जाएगी। इस चट्टान के नीचे से निकल भागने के लिए कसमसाना भी अपने-आप को छील लेना ही होगा। इसीलिए अप्पी शिथिल हो पड़ी है। अब उसे कोई छेड़े नहीं। वह चुपचाप, बेआवाज इस दुनिया से गुजर जाना चाहती है। और मुकुल तो सचमुच का डॉक्टर भी नहीं।

भैया उठकर चले गए हैं। मुकुल अप्पी के पास अकेला रह गया है। अप्पी ने फैसला कर लिया है कि मुकुल की बातों में नहीं आएगी। वह सब समझती है। मुकुल सोच रहा होगा, अप्पी को कोई मानसिक बीमारी है, जिसे वह बातें बनाकर दूर कर देगा। अँह। बड़ा आया डॉक्टर। अप्पी अभी सारी डॉक्टरी फेल कर देगी।

"हाँ, अप्पी! अब बोलो, क्या तमाशा बना रखा है यह? तुम वाकई बीमार हो?"

"धीरे बोलो, कोई सुन लेगा। मुझे कुछ नहीं हुआ है।"

मुकुल के चेहरे पर ढेर-सी नासमझी घिर आती है। अप्पी को मजा आता है। एक ही दाँव में डाक्टर साहब चित्त। अब कर लो अप्पी का इलाज। मुकुल कुछ और बोले, इससे पहले ही अप्पी उठकर बैठ जाती है। बेवजह हँसने लगती है। मुकुल का विस्मय और बढ़ जाता है।

"तब क्या भैया मजाक कर रहे थे? और तुम्हारा डाक्टर भी...?"

अप्पी इस प्रश्न को टाल जाती है। पूछती है, "कहाँ रहे इतने दिन? आए क्यों नहीं?"

"गाँव गया था।"

मुकुल बोल रहा है। अपने बारे में कुछ बता रहा है। लेकिन अप्पी देख रही है, उसके चेहरे पर नासमझी और विस्मय की जगह अब एक कड़वी-सी खीज फैल गई है। वह बोल रहा है, पर लगता है, कुछ नहीं कहने के लिए कुछ कह रहा है। अप्पी को लगता है,

खेल ज्यादा नहीं चल पाएगा। पूछ लेती है, "क्या बात है? तुम्हारा मुँह क्यों फूलता जा रहा है?"

"दुख को मजाक बनाना ठीक नहीं, अप्पी! लेट जाओ, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है।" मुकुल अचानक कह देता है। अप्पी को लगता है, जब से आया है, शायद पहली बार कुछ बोला है। अप्पी ने सुना है और उसके मन में तीखी कटुता भर उठी है। कहती है, "दुख? तुम्हें पता है दुख क्या होता है?"

"थोड़ा-थोड़ा जानता हूँ। मुझे मालूम है, तुम्हें क्या दुख है।"

"मुझे?"

"हाँ। मुझे मालूम है, जब से तुम्हारे पिताजी की मृत्यु हुई है, तुम सहज नहीं रह पा रही हो। यह ठीक है कि भाईसाहब तुम्हें कोई अभाव महसूस नहीं होने देते, लेकिन पिता का अभाव क्या पूरा हो सकता है? मैं जानता हूँ, अप्पी, तुम एक निश्चिंत और स्वच्छंद लड़की थीं। एकदम चिंताओं से मुक्त। भविष्य के बारे में तुम कभी सोचती ही नहीं थीं। तुम्हें लगता था, जो कुछ होगा, अच्छा ही होगा। लेकिन पिताजी के जाने के बाद तुम्हें असुरक्षा के डर ने घेर लिया। तुम सोचने लगीं, तुम्हारा क्या होगा। इसीलिए परीक्षा, जिसकी तरफ से तुम हमेशा लापरवाह रहती थीं, इस बार तुम्हारे लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन गई। और... खैर, छोड़ो।"

"छोड़ो क्यों? बताओ न, और?"

"अप्पी, चिंताएँ मन को ही नहीं, शरीर को भी प्रभावित करती हैं। और जब मन और शरीर दोनों रोगी हों, अपने दुख बहुत बड़े दिखाई देने लगते हैं। लेकिन दुनिया में...।"

मोक्ष मृत्यु को ही कहते हैं न, मुकुल?"

"मोक्ष? तुम मेरी बात सुनने के बजाय मोक्ष के बारे में सोच रही हो?" मुकुल चौंक गया है। चेहरे पर आशंका की कँपकँपी-सी आकर चली गई है। लेकिन अप्पी निर्विकार है। या ऊपर से लगती है। कुछ पल यों ही एक-दूसरे की आँखों में कुछ खोजने की-सी कोशिश में निकल जाते हैं। फिर मुकुल हँस पड़ता है, "तुम एकदम पागल हो, अप्पी! खैर, तुम स्वस्थ हो, यह अच्छी बात है। मेरी चिंता दूर हुई। लेकिन भाईसाहब को इस झूठमूठ की बीमारी से क्यों परेशान कर रही हो? ठहरो, मैं उन्हें भी चिंतामुक्त कर दूँ।"

और अप्पी जब तक कुछ कहे, मुकुल दूसरे कमरे में है। भाईसाहब को बता रहा है कि वह कितना कुशल चिकित्सक है। अप्पी सुन रही है। भैया आ रहे हैं। अप्पी जैसे भारहीन होकर कहीं ऊपर उठ गई है, जहाँ से घर का सारा नाटक दिखाई पड़ता है। नाटक, जिसमें वह स्वयं को भी देख पा रही है। अपने-आप से बिलकुल अलग होकर। वह, जो बेतरह थककर अब धीरे-धीरे लेट गई है, जैसे अप्पी नहीं है। एक दुखी लड़की है। मर जाने से ठीक पहले। अप्पी को उस लड़की पर तरस आ रहा है। आखिर क्यों जिंदा रही यह बीस बरस? क्या कर लिया इसने? और अब अगर यह बच भी जाए, सौ बरस और जी भी जाए, तब भी क्या कर लेगी? इसी तरह झूठी सांत्वनाओं के बीच धीरे-धीरे मरने के सिवा?

भैया, भाभी और मुकुल सब इसी कमरे में आ गए हैं। चाय पी जा रही है। हँस-हँसकर बातें की जा रही हैं। अप्पी को आश्चर्य होता है। कैसे ये लोग सुखी और खुश रह लेते हैं? और जीवित रहे चले आने का इनका आग्रह! किस आशा से चिपके हुए हैं ये इस बेहूदा चीज से? ये भैया। पैंतीस साल जी लेने पर इन्हें क्या मिला है? एक नौकरी, जिसके छूट जाने का डर इन्हें हमेशा लगा रहता है। एक पत्नी और एक बहन और तीन बच्चों को बोझ, जिसे उठाने के लिए ये अपना छोटा-सा शौक-सिगरेट-भी छोड़ बैठे हैं। और ये भाभी। सुबह से रात तक इस घर की चाकरी करने के एवज में इन्हें क्या मिलता है? रूखी-सूखी रोटी, मामूली-से कपड़े और यह घटिया-सा मकान। इन्हें यह जिंदगी क्या दे रही है कि ये हमेशा हँसती-मुस्कराती जिए चली जा रही हैं? और यह मुकुल। इसे क्या मिला है? कहीं कोई परिवार है इसका, जिसके लिए यह इस शहर में अकेला पड़ा एक मामूली-सी नौकरी कर रहा है। उस परिवार से क्या संबंध है इसका? यही कि यह महीने के पहले सप्ताह में एक मनीऑर्डर भेज दे? फिर भी यह इतना मस्त रहता है। कैसे रह लेता होगा?

वह कुछ कह रहा है। कह रहा है, "अप्पी, तुम बिलकुल ठीक हो। आज रात अच्छे बच्चों की तरह निश्चिंत होकर सोओ। कल सुबह तुम एकदम फ्रेश उठोगी। मैं सुबह आऊँगा और तुम्हें घुमाने ले जाऊँगा। पाँच बजे तुम तैयार रहना।"

भाभी विरोध करती हैं, "अभी घूमने-फिरने लायक कहाँ हैं ये?" लेकिन वह नहीं सुनता। कहता है, "वाह, घूमने-फिरने लायक क्यों नहीं है? बहुत अच्छी बच्ची है। पैयाँ-पैयाँ चलना सीख गई है। समझदार भी हो गई है। चिज्जी-विज्जी के लिए मचलती भी नहीं।"

सब हँसते हैं। वह खुद भी हँसता है। बातून। अप्पी को अजीब लगता है। आज दिन में छह लोग आए। एक उनका नाटक था। एक नाटक यह भी है। इसे सुखांत कहे अप्पी? सुखांत। सुख-अंत। अंत में सुख। ये सब इसी तरह हँस रहे हों और अप्पी मर जाए। वह भी सुखांत होगा? अप्पी की तरफ से कितने लापरवाह होकर हँस रहे हैं ये। कितना मजा आएगा तब।

और यह दूसरा दिन है। अभी चार भी नहीं बजे हैं और अप्पी उठ बैठी है। घूमने जाने के लिए तैयार हो रही है। भाभी लगातार उसके पास हैं। डर रही हैं। घबरा रही हैं। कई बार मना कर चुकी हैं कि अप्पी इतनी कमजोरी में बाहर न निकले। लेकिन अप्पी जाएगी। जरूर जाएगी। कोई अपनी पूरी इच्छाशक्ति लगा दे, तो क्या नहीं कर सकता? अप्पी आज सिद्ध कर देना चाहती है कि वह चाहे, तो बेशर्म होकर जीती रह सकती है। शायद यह भी कि मृत्यु का वरण वह स्वेच्छा से कर रही है। मरेगी, तो इसलिए नहीं कि वह जीवन से डर गई है और पलायन के लिए उसने मौत को बुला लिया है। नहीं। अप्पी सारी दुनिया को बता जाना चाहती है कि उसने जीवन की व्यर्थता को जान लिया है। कम से कम मुकुल जैसे बेवकूफों को अप्पी यह बात जरूर बता जाना चाहती है, जो अपना जीवन सार्थक करने के चक्कर में पड़े हैं।

गर्मी के दिन हैं। फिर भी सुबह की ठंडी हवा अप्पी को न लग जाए, इसलिए भाभी उसे शॉल ओढ़ा देती हैं। अप्पी ओढ़ भी लेती है। विरोध नहीं करती। मुकुल के साथ अप्पी को बाहर भेजते समय भाभी का चेहरा रोऊँ-रोऊँ हो आया है। अप्पी को लगता है, वे उसे विदा करते समय भी ऐसी ही करुण और भावुक होंगी। क्या मजेदार बात है। वियोग का दुख। अँह। थोड़े दिन। फिर सब वही। एक व्यक्ति के रहने, न रहने से क्या फर्क पड़ जाता है दुनिया में?

रिक्शा बाजार से गुजर रहा है। बाजार अभी बंद है, लेकिन लोगों ने चलना शुरू कर दिया है। अप्पी को अजीब लगता है। लोग इतने सवेरे किस चीज की तलाश में निकल पड़ते हैं? रिक्शा पास से गुजरता है, तो घूरकर देखते हैं। क्या सोचते होंगे? भाई-बहन हैं, या पति-पत्नी, या प्रेमी-प्रेमिका। लोगों के दिमाग ठस्स हो चुके हैं। इससे ज्यादा सोच ही नहीं सकते। क्या कोई सोच सकता है कि इन दो व्यक्तियों में से एक अव्यक्त हो चुका है? अप्पी को सब लोग छोटे-छोटे निजी सरोकारों में ढिकढिब्बे मारते हुए लगते हैं। अपने से थोड़ी ही दूर कोई मर रहा है, किसी को क्या मालूम? थोड़ी ही दूर भयानक अकाल में दम तोड़ते लोगों की चिंता किसको है? यह मुकुल, जो दुनिया को बदलने की बात किया करता है, इसे भी इस समय क्या चिंता होगी? शायद यही कि

यह जिस लड़की के साथ जीवन बिताने की सोचता है, वह अगर नहीं रही, तो इसे कितनी परेशानी हो जाएगी। ठीक तो है। लोग अपनी सुख-सुविधा से प्यार करते हैं।

मुकुल पुराने बाग के पास रिक्शा रुकवाता है। पुराने बाग वाली झील अप्पी के लिए शहर की सबसे खूबसूरत जगह है। मुकुल के लिए दुनिया की सबसे खूबसूरत जगह।

दो-ढाई साल पहले सर्दियों की एक सूनी दुपहरी। साइकिलें नीचे छोड़कर चढ़ाई पर दौड़ते हुए मुकुल ने अप्पी से एक बात कही थी। अप्पी दौड़ते-दौड़ते और बाद में झील पर पहुँचकर भी देर तक हँसती रही थी। हँसते-हँसते उसने कहा था, "कभी किसी कहानी-उपन्यास में ऐसा पढ़ा है कि लड़का दौड़ते-हाँफते जोर से चिल्लाकर कहे कि लड़की, आई लव यू?" और मुकुल ने जैसे झील के पार खड़ी किसी लड़की को सुनाते हुए जोर से चिल्लाकर कहा था, "ए लड़की, सुनो। यह जिंदगी मैं तुम्हारे साथ जीना चाहता हूँ।" अप्पी के लिए वह दुपहरी आज तक नहीं बीती। लगता है, वह दृश्य स्थिर होकर उसके आस-पास अटका रह गया है। अप्पी जब चाहे, उस दृश्य को छू-टटोल-देख सकती है।

चढ़ाई पर चलते हुए अप्पी के पैर काँपने लगे हैं। बीमारी ने उसे सचमुच कमजोर कर दिया है। कुछ कदम चलकर वह मुकुल के कंधे पर हाथ रख लेती है। मुकुल की बाँह अप्पी की पीठ को सहारा देती हुए उठ जाती है। हाथ की उँगलियाँ आहिस्ता से अप्पी के बाएँ कंधे को थाम लेती हैं। अप्पी मन ही मन अपने-आप से पूछती है - यह सुख है? लेकिन अगले ही क्षण उसे गुस्सा आ जाता है। यह इतने दिन बाहर रहा और इसने एक चिट्ठी भी लिखने की जरूरत नहीं समझी। मान लो, अप्पी इस बीच मर जाती?

मुकुल जैसे अप्पी का मन भाँप लेता है। कहता है, "तुम मुझसे बहुत नाराज हो न, अप्पी? मैं मानता हूँ, गाँव जाते समय मुझे तुमसे मिलकर जाना चाहिए था..."

"उससे जिंदगी कुछ बदल जाती क्या?"

"कैसी बातें करने लगी हो।"

"कैसी?"

"निराशा की। आखिर तुम्हें ऐसा क्या दुख है?"

अप्पी चुप रहती है। झील तक कुछ नहीं बोलती। झील पर पहुँचकर दोनों कुछ देर स्तब्ध-से खड़े रह जाते हैं। झील किनारे से बहुत दूर तक सूख गई है। सिर्फ बीच में

थोड़ा-सा पानी बचा है। और मौसम का यही हाल रहा, तो वह भी कुछ दिनों में सूख जाएगा। झील के तल की सूखी हुई मिट्टी में मोटी-मोटी दरारें पड़ गई हैं। उन्हें देखकर दहशत-सी होती है। शायद यही वजह है कि सुबह की सैर को आने वाले लोग झील पर दिखाई नहीं दे रहे हैं। नीचे बाग में होंगे। अप्पी और मुकुल चुपचाप सीढ़ियों पर बैठ जाते हैं। अप्पी दूर तक निगाह दौड़ाकर दार्शनिक अंदाज में बोलती है, "सूखी हुई यह झील कितनी भयानक लगती है। दूर-दूर तक फैले हुए पानी को देखकर कैसा विस्तार-भाव जागता था मन में। और अब लगता है, जैसे यहाँ आकर छोटे हो गए हैं। सब सूख रहा है।"

"कहाँ पढ़ लिया यह?" मुकुल हँसने-हँसाने की चेष्टा करता है।

"मजाक नहीं, मुकुल। सचमुच मुझे जीवन में अब कोई तुक नजर नहीं आती।"

अप्पी कहती है। थोड़ी देर चुप रहकर फिर कहती है, "मुकुल, तुम्हें भोलाराम की याद है?"

"भोलाराम?"

"वह गौतम स्कूल का चपरासी।"

"हाँ, वह। याद है। क्यों?

"वह मर गया।"

"अरे..." भोलाराम मुकुल की आँखों के सामने आ जाता है। देहात से आया एक किसान, जिसकी जमीन छिन गई है। जिसे बुरी तरह अपमानित होकर अपना गाँव छोड़ना पड़ा है। जिसका पूरा परिवार शहर में आकर भूख और बीमारी से मर गया है। लेकिन जो अब भी चार कूँड़ जमीन अपनी बनाने की सोचता है। जमीन की कितनी लालसा थी उसमें। पेट काटकर वह पैसा बचाता था। और शक्की ऐसा कि बैंक और पोस्ट ऑफिस पर उसे रत्ती भर यकीन नहीं था। अपना धन वह अपने पास रखता था। छप्पर में छिपाकर। गूदड़ों में सीकर। जमीन में गाड़कर। लेकिन हर बार चोरों को न जाने कैसे पता चल जाता था। चोरी के बाद हर बार भोलाराम सिर पीट-पीटकर रोता था। सारे शहर को पता चल जाता था कि भोलाराम का धन फिर चुरा लिया गया है। लेकिन वह शायद अगले ही दिन से फिर बचत करने लगता था और अपनी जमीन के सपने देखने लगता था। मुकुल ने एक बार अप्पी के सामने ही उसे समझाया था कि वह जमीन का लालच छोड़ दे, उन मजदूरों को देखे, जो गाँवों से आ-आकर शहर के ही

हो गए हैं। लेकिन भोलाराम नहीं माना था। वह मजदूरों से नफरत करता था। कहता था - उन सालों की भी कोई इज्जत है...।

अप्पी कह रही है, "इस बार चोरों ने छिपाए हुए धन का पता पूछने के लिए उसे बाँधकर इतना मारा कि वह मर ही गया।"

"चलो, अच्छा हुआ। छूट गया जंजाल से।"

"तुम्हें दुख नहीं हुआ, मुकुल?"

"भोलाराम के मरने का?" मुकुल हँसता है, "नहीं। मुझे वह आदमी हमेशा बेवकूफ और मजेदार लगा।"

"यानी उसने जिंदगी भर इतना सब सहा, उसका तुम्हारे लिए कोई मूल्य नहीं है? इतनी बड़ी ह्यूमन ट्रेजेडी को तुम हँसी में उड़ा दोगे?"

"नहीं। ट्रेजेडी तो यह वाकई है। और मैं इसे हँसी में नहीं उड़ा दूँगा। इससे सबक लेने की कोशिश करूँगा। लेकिन इसमें जो आयरनी है, उस पर भी तुम्हारा ध्यान गया?"

"आयरनी! हाँ..." अप्पी कुछ सोचने लगती है। सोचते-सोचते ही बोलती है, "इतनी बड़ी दुनिया और और उसमें एक आदमी अपने लिए थोड़ी-सी जमीन चाहता है। उस जमीन की उम्मीद में वह अपना सब कुछ तबाह कर लेता है। तुम्हारा शब्द बोलूँ, तो सर्वहारा हो जाता है। फिर भी उम्मीद नहीं छोड़ता। सारी जिंदगी कोशिश करता है। लेकिन जमीन नहीं मिलती। वह लावारिस मर जाता है। म्युनिसिपैलिटी वाले उसकी लाश उठाकर मरघट में फूँक आते हैं। यह जिंदगी है? यह जीने लायक जिंदगी है? और जरा सोचो, क्या हम सब भी अपनी-अपनी जगह भोलाराम ही नहीं हैं? हम सब हमेशा जिंदगी में अपनी-अपनी जमीन ढूँढ़ते हैं और अंत में पाते हैं कि जमीन कहीं नहीं है।" मुकुल हँसता है। जोर से हँसता है। अप्पी चिढ़ जाती है, "तुम हँस रहे हो?"

"हँसूँ नहीं तो क्या करूँ? मैं समझ गया हूँ, तुम अपनी फिलॉसफी समझाने की कोशिश कर रही हो। मैं तुम्हारी फिलॉसफी भी समझ गया हूँ। वह यह है कि यह दुनिया और यह जिंदगी एकदम बकवास चीज है, जिंदा रहने का कोई अर्थ नहीं है और इसलिए आदमी को मर जाना चाहिए। लेकिन, मैडम, आपने इस घटना की जो व्याख्या पेश की है, वह गलत है।"

"गलत है? क्या गलत है इसमें?"

"अप्पी, हम सब भोलाराम नहीं हैं। यह ठीक है कि हम सब जिंदगी में अपनी जमीन तलाश रहे हैं और देख रहे हैं कि जमीन नहीं मिल रही है। लेकिन हममें से कुछ लोग यह भी जानते हैं कि लोगबाग अपनी जमीन अक्सर वहाँ तलाशते हैं, जहाँ जमीन है ही नहीं। जमीन के सपने देखने और हवा में हाथ-पाँव मारने से जमीन नहीं मिलती, अप्पी! लोग अपने नीचे नहीं देखते कि जहाँ वे खड़े हैं, वह भी जमीन ही है। उसे देखें और वहाँ मजबूती से पाँव जमाकर खड़े हों, तो...।"

"मगर पाँव जमाए कैसे? जहाँ खड़े होते हैं, वह जमीन क्या हमारी होती है? कभी भी कोई धक्का देकर हटा सकता है।"

"जमीन किसी के बाप की नहीं है। उस पर हर आदमी का हक है।"

"हक है। कब्जा नहीं है।"

"क्योंकि कुछ लोगों ने कर रखा है। और जमीन पर इस तरह कब्जा होना नहीं चाहिए। इसलिए जिन लोगों ने उस पर कब्जा कर रखा है, उन्हें बेदखल करना होगा।"

अप्पी मुस्कराती है। मन ही मन कहती है - लो, शुरू हो गया इसका समाजवाद। अप्पी को मुकुल के समाजवाद से नफरत नहीं, लेकिन चिढ़ जरूर है। चिढ़ का कारण है। मुकुल ने अपने जीवन की जो प्राथमिकताएँ बना रखी हैं, उनकी सूची में अप्पी का नंबर बहुत बाद में आता है। यूनियन-पार्टी-अखबार-पोस्टर से फुरसत मिलेगी, तो अप्पी याद आएगी। फिर भी दावा यह कि अप्पी से प्यार करते हैं और उसके साथ जिंदगी जीना चाहते हैं। कभी-कभी अप्पी को लगता है, मुकुल के साथ उसकी जिंदगी निभ नहीं पाएगी। बेहतर हो, अप्पी कोई विकल्प ढूँढ़ ले, मगर दिक्कत यह है कि विकल्प मिलता नहीं है। मुकुल से तुलना करती है, तो दूसरे लड़के एकदम गावदू नजर आते हैं। और अप्पी अपने से आठ-नौ साल बड़े इस 'आदमी' से प्यार करने को मजबूर है।

मुकुल कह रहा है, "भोलाराम ने गलती यह की कि उन लोगों को बेदखल करने की नहीं सोची। उलटे, उन्हीं लोगों में शामिल होने की सोचता रहा। उन्हीं लोगों की तरह जमीन पर कब्जा करने की सोचता रहा। तुम समझती हो, वह सर्वहारा था। नहीं। तुम शायद सर्वहारा का मतलब नहीं जानतीं। शब्दों का प्रयोग उनके सही अर्थों में होना चाहिए, नहीं तो वे हमें गलत नतीजों तक पहुँचा देते हैं। भोलाराम सर्वहारा नहीं था। काल्पनिक ही सही, जोड़े हुए पैसों की शक्ल में ही सही, उसके पास अपनी जमीन थी, जिसे वह बार-बार खोता रहा। चोर उसकी बचत के पैसे नहीं, हर बार उसकी जमीन

चुराते रहे। और वह आखिर तक यह बात नहीं समझ सका। इसीलिए मैं कहता हूँ कि वह एक बेवकूफ और मजेदार आदमी था।

"और उसने जिंदगी भर जो संघर्ष किया? इतना सब सहा? सो?"

"सहना संघर्ष नहीं होता, अप्पी! हम लोगों को यही सिखाया गया है कि जो जितना दुख सहन कर ले, वह उतना ही वीर। लेकिन यह वीरता नहीं है, अप्पी! कायरता है। अत्याचार को सह लेना अत्याचारी को शह देना है। उसे और मजबूत बनाना है। संघर्ष कहाँ, यह तो दुश्मन के हाथों में खेल जाना हुआ।"

"यानी तुम्हें भोलाराम जैसे लोगों से कोई सहानुभूति नहीं?"

"मुझे ऐसे लोगों पर तरस आता है, सहानुभूति नहीं होती।"

"और अकाल में जो लोग मर रहे हैं, उनसे?"

"अकाल में मरने वाले तुमने कहाँ देख लिए? समाज-सेवा करने गई थीं, तब?"

"हाँ, तभी।" अप्पी ने समाज-सेवा कैंप से लौटने के बाद से आज तक अपने अनुभवों के बारे में किसी से कोई बात नहीं की है। आज कहने लगी है। मुकुल सुन रहा है। वह गंभीर हो गया है। अप्पी की तरफ नहीं, सूखी हुई झील की ओर ताक रहा है, जिसमें अब थोड़ा ही जल शेष रह गया है। अकाल के अपने अनुभव उसके मन में जागने लगे हैं। चाहता है, अप्पी को रोक दे, लेकिन बोल नहीं पाता। आँखों में अनेक दृश्य उमड़ आते हैं - पानी और हरियाली की खोज में अपने ढोर-डंगरों सहित निकले हुए लोगों के काफिले। अपनी धरती का मोह छोड़कर अपनी बस्तियाँ उजाड़कर जाते हुए लोग। राह चलते प्यास से मर जाने वाले एक बच्चे को चुपचाप रेत में दबाकर आगे बढ़ जाने वाले लोग। अपना शरीर मौत के हवाले करने के बजाय अपने साथ शहर ले जा सकने वाले लोगों के हवाले करती हुई औरतें। एक कौर रोटी और एक घूँट पानी के लिए रिरियाते हुए भिखारी। पचास-साठ पैसों के लिए सारे दिन अपनी बची-खुची ताकत निचोड़कर बेचते हुए मजूर। उन दृश्यों को याद करना भी...।

अचानक मुकुल को गरमी लगने लगती है। देखता है, धूप निकल आई है। झील के पार की पहाड़ी के पीछे से पूरा सूरज ऊपर उठ आया है।

अप्पी कह रही है, "सच, मुकुल, यह सब देखकर जीवन में मेरी आस्था बिलकुल समाप्त हो गई है। तुम कहा करते हो, यह जनता जागेगी। एक दिन आएगा, जब ये

जानवरों की जिंदगी जीने को मजबूर लोग भले आदमियों की तरह जीने की माँग करेंगे, उसके लिए कोई बड़ी लड़ाई छेड़ेंगे और दुनिया बदलेगी। लेकिन, मुकुल, पता नहीं वह दिन कब आएगा। आएगा भी या नहीं, कौन जाने। और तब तक लोग यों ही मरते रहेंगे। कीड़े-मकोड़ों की तरह। जानवरों की तरह... मुझे इस दुनिया से नफरत हो गई है, मुकुल! तुम लोगों के पास कम से कम यह विश्वास तो है कि दुनिया बदल जाएगी। मेरे पास तो वह भी नहीं। मैं क्या करूँ?

कहते-कहते अप्पी रोने लगती है। मुकुल झील के पार देखना छोड़कर अप्पी की तरफ देखता है। पीठ पर हाथ रखकर सांत्वना देने की कोशिश करता है। कहता है, "मुझे मालूम है, अप्पी, तुम मेरी बातों से चिढ़ती हो। उनमें विश्वास नहीं करतीं। और मैं तुम्हें विश्वास दिला भी नहीं सकता। किसी तर्क से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि जिंदगी मौत से बेहतर है। लेकिन हम इसे सच मानते हैं। इस सच में आस्था रखते हैं...।"

"छोड़ो, मुकुल, कोई और बात करो।"

मुकुल चुप होकर थोड़ी देर अप्पी को देखता रह जाता है। फिर बहुत ही धीरे-धीरे कहना शुरू करता है, "अप्पी, अकाल मैंने भी देखा है। देखा ही नहीं, वह मेरे ऊपर बीता है। तुम्हें पता है, मेरा गाँव कहाँ है?"

"नहीं।"

"अकालग्रस्त इलाके के बीचोंबीच। अब तक किसी को बताया नहीं, आज तुम्हें बता रहा हूँ, मैं गाँव क्यों गया था। माँ ने किसी से चिट्ठी लिखवाई थी कि मेरे भाई सूखा पड़ जाने के कारण शहर चले गए हैं और कुछ दिन से भाभी का पता नहीं है...।"

"अरे..."

"यहाँ से जाते समय बहुत परेशान था। इसीलिए तुमसे मिला नहीं। वहाँ पहुँचा, तो गाँव करीब-करीब खाली हो चुका था। अपना घर देखकर लगा, यहाँ मुद्दत से कोई नहीं रहता है। माँ को ढूँढ़ता हुआ गली में निकला, तो एक बूढ़ा मौत का इंतजार करता-सा बैठा दिखाई दिया। पहले तो उसने मुझे पहचाना ही नहीं। बताने पर पहचाना भी, तो बिलकुल ठंडी आवाज में बोला - थारी माँ मर गी रे, मुक्का!"

"क्या...? माँ...?"

"हाँ, अप्पी, माँ नहीं रहीं। भाभी का भी कुछ पता नहीं चला।" कहकर मुकुल चुप हो जाता है। अप्पी भी कुछ नहीं बोल पाती है। थोड़ी देर बाद मुकुल ही फिर बोलता है, "और तब, अप्पी, मुझे भी लगा था कि जिंदा रहने का कोई मतलब नहीं रह गया है। मैं वहाँ से चल दिया था। कई दिनों तक पागल-सा चारों तरफ मँडराती मौत के बीच घूमता रहा था। तुम जैसे अकाल पीड़ितों की सेवा-सहायता करने वाले लोगों के दो-एक दल मुझे भी मिले थे। और मुझे उनसे नफरत हुई थी। उनके पास अपना राशन-पानी था, अपनी जीपें और मोटरें थीं। और वे अकाल में बस एक सुरक्षित दूरी तक आए थे कि जब भी उन पर कोई संकट आए, वे आराम से अपने शहरों को वापस हो लें। धूप से बचने के लिए उनके पास छाते थे और प्यास से बचने के लिए पानी की बोतलें। और वे अकाल पीड़ितों को दवाइयाँ बाँट रहे थे। दवाइयाँ!"

एक गहरी साँस लेकर मुकुल चुप हो गया है। अप्पी ने उसकी साँस में दबी हुई सिसकी-सी सुनी है। देखती है, मुकुल के गालों पर आँसू बह आए हैं। अप्पी ने मुकुल को हमेशा हँसते हुए देखा है। रोते हुए आज पहली बार देख रही है। अंदर हूक-सी उठती है। और अप्पी की रुलाई फूट पड़ती है। हाथ अपने-आप मुकुल की तरफ बढ़ जाते हैं। सिसक-सिसककर रोते हुए बच्चे की तरह मुकुल का सिर उसके सीने से आ टिकता है। दोनों रो रहे हैं और दोनों एक-दूसरे को सांत्वना देना चाह रहे हैं। और अच्छा है कि कोई उन्हें देख नहीं रहा है।

खूब रो चुकने के बाद एक-दूसरे के आँसू पोंछकर दोनों चुपचाप अपनी जगह से उठ जाते हैं। धूप अच्छी तरह निकल आई है। अप्पी को शॉल में गरमी लगने लगी है। शॉल उतारकर उसकी तह कर लेती है और उसे अपनी बाईं बाँह पर डाल लेती है। दाहिना हाथ मुकुल के हाथ में है और उस हाथ में जो गरमी है, अप्पी को अच्छी लग रही है।

सड़क की तरफ आते हुए ढाल पर उतरते समय अप्पी कहती है, "फिर भी तुम इतना हँस लेते हो, मुकुल?"

मुकुल कोई उत्तर नहीं देता। थोड़ी दूर चुपचाप चलने के बाद कहता है, "हम बड़े गलत संस्कारों में पले हैं, अप्पी! लोगों को दुखी देखकर हम दया और करुणा से भर जाते हैं, दो-चार आँसू बहा लेते हैं, जीवन से निराश हो जाते हैं, और समझते हैं कि हम बहुत अच्छे हैं और हमने सब कुछ जान लिया है।"

मुकुल के लिए पूरी सहानुभूति होते हुए भी उसका व्यंग्य अप्पी को चुभ जाता है। कहती नहीं, जैसे अपने-आप उसके मुँह से निकल जाता है, "लेकिन वास्तव में अच्छे और ज्ञानी तो वे हैं, जो बड़े-बड़े दुखों को भी हँसी में उड़ा देते हैं। क्यों?"

"हँसता तो हूँ, अप्पी, लेकिन यह कोई नशा नहीं है, जिसमें दुख झेला या भुलाया जा सके। और हँसना दुख की उपेक्षा करना भी नहीं है। कभी मेरी जिंदगी में आकर देखो। जिन लोगों के बीच रहता हूँ, उनके दुखों की सीमा नहीं है। लेकिन वे अपने बीच किसी मुँह लटकाए रहने वाले को पसंद नहीं करते। खुद भी गला फाड़कर हँसते हैं। इसे तुम उनका नशा या बेवकूफी नहीं कह सकतीं।"

स्वर से अप्पी को लगता है, मुकुल को उसकी बात से दुख हुआ है। पछतावा-सा होने लगता है। मुकुल को और दुखी करने का तो उसका इरादा नहीं था।

मुकुल फिर बोलता है, "गाँव से लौटकर मुझे भी तुम्हारी तरह निराशा का दौरा पड़ा था। सारे कामों से छुट्टी लेकर आठ-दस दिन अपने कमरे में पड़ा रहा। लोगों ने बार-बार मुझे बुलाया, मैं कहीं नहीं गया। मैंने फैसला कर लिया था, अब सारे झंझट छोड़ दूँगा। बस, नौकरी करूँगा और जब तक जिया जाएगा, जीता रहूँगा। लेकिन एक दिन एक मिस्त्री आया। वह लोको वर्कशॉप में काम करता है। वैसे मैं जानता हूँ, वह मुझे कितना प्यार करता है, लेकिन उस दिन उसने मुझे ताबड़तोड़ गालियाँ देते हुए कहा, 'बाबू, तुम समझता है, तुम नईं आएगा तो हमारा काम रुक जाएगा? तुम साला अपने-आप को समझता क्या है? अकाल में हज्जारों आदमी मर गिया। तुम भी मर जाओ। तुम्हारे वास्ते हम लोग बइठा नईं रहेगा। दुनिया को चलना माँगता है और दुनिया योंई चलेगा। तुम बाबू लोग है। तुम लड़ाई से भाग सकता है। हम लोग भाग के कहाँ जाएगा? अपुन को तो लड़ना ही माँगता।' मैं उसकी बातें सुनता रहा और मुझे लगा, जो काम कोई दवा नहीं कर सकती थी, उसकी गालियों ने कर दिया है। उसके आने से पहले मैं बेहद उदास बैठा था, लेकिन जब वह मुझे गालियाँ सुनाकर जाने लगा, तो मुझे हँसी आ गई। और मैं इतने जोर से हँसा कि मिस्त्री जाते-जाते पलटकर मुझे धमकाता हुआ बोला, 'तुम हँसता कायको है?' मैंने कहा - मैं भी चलता हूँ। भागकर मैं भी कहाँ जाऊँगा।"

किस्सा सुनाकर मुकुल फिर हँसने लगा है। अप्पी को आश्चर्य हो रहा है। यह वही मुकुल है, जो थोड़ी देर पहले फूट-फूटकर रो रहा था? थोड़ी देर पहले जो पछतावा-सा अप्पी के मन में भर गया था, अब अपने-आप ही दूर हो गया है। उसे मुकुल पर गुस्सा आने लगा है - यह मुझे चैन से मरने भी नहीं देगा।

—— X ——

https://www.hindiadda.com/kaheen-jameen-nahin/